

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध अध्याय 4: राजा अम्बरीष

16 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब हाथ में तलवार लिए एक अग्निमयी कृत्या उन पर टूट पड़ती है, तब भी राजा अम्बरीष एक पग भी नहीं हटते — क्योंकि भगवान् का अपना सुदर्शन चक्र पहले से ही अपने भक्त की रक्षा में नियुक्त है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं एवं शिक्षाओं की एक श्रद्धापूर्ण यात्रा। नवम स्कन्ध का यह चौथा अध्याय दो परस्पर जुड़ी कथाएँ सुनाता है। पहली है नाभाग की कथा — एक सत्यनिष्ठ युवा ब्राह्मण, जिसके पास सिवाय सत्य के कुछ नहीं बचता, और जो पाता है कि सत्य ही उसकी वास्तविक विरासत है। उसी वंश में समस्त शास्त्रों के सर्वाधिक तेजस्वी भक्तों में से एक

प्रकट होते हैं — राजा अम्बरीष, जिन्होंने समस्त पृथ्वी पर राज्य किया, फिर भी उसके वैभव को स्वप्नवत् समझा, और जिन्होंने अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को भगवान् विष्णु की सेवा में लगा दिया। जब महर्षि दुर्वासा क्रोधवश इस साधु राजा पर एक अग्निमयी कृत्या छोड़ते हैं, तब भगवान् का अपना चक्र अपने भक्त की रक्षा हेतु उठ खड़ा होता है — और यह अध्याय भागवत की सबसे प्रिय घोषणाओं में से एक की ओर खुल जाता है: कि परम भगवान् स्वयं को मानो उनका सेवक बना लेते हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण हृदय उन्हें अर्पित कर दिया है।

अध्याय-परिचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 9 (नवम स्कन्ध)
- अध्याय: 4 (चतुर्थ अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: नाभाग, और राजा अम्बरीष की भक्ति
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए — सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में शौनक ऋषि एवं ऋषि-समुदाय को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: अंगिरा ऋषियों का यज्ञस्थल; अम्बरीष का राज्य एवं यमुना-तट पर मधुवन; तथा ब्रह्मलोक, शिवलोक और वैकुण्ठ
- केन्द्रीय विषय: नाभाग की सत्यनिष्ठा एवं रुद्र की कृपा; राजा अम्बरीष की आदर्श भक्ति; उनका द्वादशी-व्रत; दुर्वासा का क्रोध एवं सुदर्शन चक्र द्वारा रक्षा; और भगवान् का यह उपदेश कि वे प्रेम-वश अपने भक्तों के अधीन हैं
- मुख्य श्लोक-परास: नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 1-71
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

नाभाग और सत्य की विरासत

वैवस्वत मनु के एक और पुत्र थे नाभाग। उनके पुत्र, जिनका नाम भी नाभाग था, अपने भाइयों में सबसे छोटे और सर्वाधिक विद्वान् थे, और असामान्य रूप से दीर्घकाल तक ब्रह्मचारी रूप में विद्या-अध्ययन में रहे। जब वे अन्ततः लौटे, तब उनके बड़े भाई पैतृक सम्पत्ति आपस में बाँट चुके थे और परिहासवश उन्होंने अपने वृद्ध पिता को ही उनका “भाग” बता दिया। पिता के पास जाकर युवक ने पूछा कि उसके लिए वास्तव में क्या रखा गया है; पिता ने कहा कि भाइयों के वचन पर ध्यान न दे।

इसके स्थान पर पिता ने उसे ज्ञान की सच्ची विरासत दी: निकट ही अंगिरा ऋषि के वंशज ब्राह्मण एक महान् यज्ञ कर रहे थे, किन्तु प्रत्येक छोटे दिन के कर्म में भूल कर बैठते थे। नाभाग को उन्हें विश्वेदेवों की प्रसन्नता हेतु दो वैदिक सूक्त सिखाने थे, और कृतज्ञतास्वरूप, स्वर्गारोहण के समय वे यज्ञ के पश्चात् बचा हुआ धन उसके लिए छोड़ जाएँगे। सब कुछ वैसा ही हुआ जैसा पिता ने कहा था। किन्तु जैसे ही नाभाग वह धन बटोरने लगा, उत्तर दिशा से एक श्यामवर्ण पुरुष आया और उस पर अपना अधिकार जताया।

तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ।

उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥

taṁ kaścit svikariṣyantaṁ puruṣaḥ kṛṣṇa-darśanaḥ uvācottarato 'bhyetya mamedam vāstukaṁ vasu

अर्थ: जब वह उस धन को ग्रहण करने ही वाला था, तब उत्तर से एक श्यामवर्ण पुरुष आकर बोला, “यज्ञभूमि पर बचा हुआ यह धन मेरा है।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 6)



जब नाभाग यज्ञ के पश्चात् बचा हुआ धन बटोरता है, तब उत्तर से एक श्यामवर्ण आकृति — स्वयं भगवान् रुद्र — आकर उस पर अपना अधिकार जताती है, और एक विवाद उठता है जिसे नाभाग की सत्यनिष्ठा सुलझाएगी (श्लोक 6)।

परस्पर सहमति से यह विवाद नाभाग के पिता के पास निर्णय हेतु ले जाया गया, जिन्होंने कहा कि प्राचीन काल में किसी यज्ञ में ऋषियों ने यज्ञभूमि पर बचा सब कुछ रुद्र का भाग निश्चित किया था; अतः वह धन उन्हीं का है। नत मस्तक होकर नाभाग ने पिता का यह निर्णय उस श्यामवर्ण पुरुष को सत्यतापूर्वक बता दिया — जो वस्तुतः भगवान् रुद्र ही थे। पिता-पुत्र दोनों की सत्यवादिता से प्रसन्न होकर रुद्र ने नाभाग को सनातन ब्रह्म का ज्ञान प्रदान किया और वही विवादित धन उसे भेंट कर अन्तर्धान हो गए। इसी नाभाग से भगवान् के महान् भक्त अम्बरीष उत्पन्न हुए, जिन पर ब्राह्मण का शाप — जो अन्यत्र कभी निष्फल नहीं होता — भी प्रभावहीन रहा।

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ।

नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥

nābhāgād ambarīṣo 'bhūn mahā-bhāgavataḥ kṛtī nāspṛśad brahma-sāpo 'pi yaṁ na pratihataḥ kvacit

अर्थ: नाभाग से अम्बरीष उत्पन्न हुए, जो भगवान् के महान् भक्त एवं पुण्यकर्मा थे, जिन्हें ब्राह्मण का वह शाप भी स्पर्श न कर सका जो अन्यत्र कहीं निष्फल नहीं होता। (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 13)

राजा अम्बरीष को भक्ते

यह सुनकर राजा परीक्षित उस राजर्षि की कथा सुनने को उत्सुक हो उठे जिसे अनिवार्य ब्राह्मण-शाप भी हानि न पहुँचा सका। तब शुकदेव ने कथा खोली। अम्बरीष को सात द्वीपों सहित समस्त पृथ्वी का साम्राज्य, अक्षय धन एवं अनुपम शक्ति उत्तराधिकार में मिली — फिर भी उन्होंने उस सबको स्वप्न में देखे पदार्थों से अधिक मूल्यवान् नहीं समझा, यह जानते हुए कि धन कैसे मोह उपजाता है और कितना क्षणभंगुर है। भगवान् वासुदेव और उनके भक्तों के प्रति उनकी भक्ति ऐसी थी कि समस्त अपार सम्पत्ति उन्हें मिट्टी के ढेले से अधिक न लगती थी।

उनका सम्पूर्ण अस्तित्व उपासना का साधन बन गया। उन्होंने मन को भगवान् के चरणकमलों में लगाया; वाणी को उनकी महिमा के वर्णन में, हाथों को मन्दिर की सफाई में, कानों को पवित्र कथाओं के श्रवण में, नेत्रों को विग्रह एवं तीर्थों के दर्शन में, स्पर्श को भक्तों के अंगों की सेवा में, घ्राण को उनके चरणों में अर्पित तुलसी की सुगन्ध में, जिह्वा को उन्हें निवेदित प्रसाद में, चरणों को भगवान् के तीर्थों की यात्रा में, और मस्तक को उनके चरणों में प्रणाम में लगाया।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥

sa vai manaḥ kṛṣṇa-padāravindayor vacāṁsi vaikuṇṭha-guṇānuvārṇane karau harer mandira-mārjanādiṣu śrutiṁ cakārācyuta-sat-kathodaye

अर्थ: उन्होंने अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणकमलों में, वाणी को वैकुण्ठपति के गुणों के वर्णन में, हाथों को भगवान् के मन्दिर की सफाई आदि में, तथा कानों को अच्युत भगवान् की मंगलमयी कथाओं के श्रवण में लगाया। (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 18-20)



राजा अम्बरीष अपनी प्रत्येक इन्द्रिय भगवान् को समर्पित करते हैं — हाथ मन्दिर बुहारते हुए, नेत्र विग्रह पर, वाणी स्तुति में — अपने सम्पूर्ण राजसी जीवन को उपासना रूप में अर्पित करते हुए (श्लोक 18-20)।

समर्पित ब्राह्मणों के मार्गदर्शन में पृथ्वी का शासन करते हुए उन्होंने सरस्वती-तट पर वसिष्ठ, असित एवं गौतम जैसे ऋषियों द्वारा सम्पन्न भव्य अश्वमेध यज्ञ किए। न वे और न उनकी प्रजा कभी स्वर्ग की कामना करती थी, इतने वे भगवान् की महिमा के श्रवण-कीर्तन में लीन थे; सिद्धों को भी दुर्लभ सुख उनके लिए आकर्षण न रखते थे, अन्तर में स्थित भगवान् के आनन्द के समक्ष फीके पड़ जाते थे। धीरे-धीरे उन्होंने प्रत्येक आसक्ति त्याग दी — घर, पत्नी, सन्तान और सम्बन्धियों से, हाथी, रथ और कोषागारों से — सबको असत्य मानते हुए। उनके अनन्य प्रेम से प्रसन्न होकर श्री हरि ने उन्हें अपना ही चक्र, सुदर्शन, प्रदान किया — शत्रुओं का त्रास और सेवकों का रक्षक।

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ।

एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भक्ताभिरक्षणम् ॥ २८ ॥

tasmā adād dhariś cakram pratyānika-bhayāvaham ekānta-bhakti-bhāvena prīto bhaktābhirakṣaṇam

अर्थ: उनकी अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर श्री हरि ने उन्हें अपना चक्र दिया, जो शत्रुओं में त्रास उत्पन्न करता और भक्तों की रक्षा करता है। (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 28)



अम्बरीष के अनन्य प्रेम से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उन्हें अपना ही चक्र, सुदर्शन, प्रदान करते हैं — शत्रुओं का त्रास और भक्तों का कवच (श्लोक 28)।

द्वादशी-व्रत और दुर्वासा का आगमन

भगवान् को प्रसन्न करने हेतु अम्बरीष ने अपनी समान-मना रानी सहित एक पूरे वर्ष तक प्रत्येक द्वादशी को उपवास का व्रत लिया। कार्तिक मास की एक ऐसी ही द्वादशी को, उपवास और यमुना-स्नान के पश्चात्, उन्होंने मधुवन के पवित्र वन में श्री हरि की भव्य भक्ति से पूजा की, एकत्र ब्राह्मणों का सम्मान किया, और उन्हें स्वर्ण-रजत से सुसज्जित साठ करोड़ गौएँ भेंट कीं। जैसे ही वे भोजन से अपना उपवास पूर्ण करने वाले थे, एक अप्रत्याशित अतिथि पधारे — कोई और नहीं, स्वयं परम शक्तिशाली महर्षि दुर्वासा।

राजा उठ खड़े हुए, पूरे सम्मान से उनका स्वागत किया, और भोजन की प्रार्थना की। दुर्वासा ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और मध्याह्न की नित्य-क्रिया पूर्ण करने यमुना गए। किन्तु द्वादशी का केवल आधा मुहूर्त — लगभग चौबीस मिनट — शेष था, जिसके भीतर व्रत तोड़ना आवश्यक था; और अधिक प्रतीक्षा करना व्रत भंग होता, किन्तु अतिथि से पूर्व भोजन करना ब्राह्मण का अपमान होता। ब्राह्मणों से परामर्श कर अम्बरीष ने केवल जल ग्रहण कर संकट का समाधान किया, जिसे शास्त्र व्रत-भंग भी मानते हैं और भोजन भी नहीं। फिर भगवान् का ध्यान करते हुए वे ऋषि की प्रतीक्षा करने लगे।

लौटकर दुर्वासा ने अपनी योगदृष्टि से जान लिया कि राजा ने क्या किया है, और क्रोध से जल उठे। अम्बरीष को अभिमानी और अविनयी राजा कहकर उन्होंने अपने सिर से एक जटा उखाड़ी और उससे प्रलयाग्नि के समान एक भयंकर कृत्या (राक्षसी) उत्पन्न की, और उसे हाथ में तलवार लिए राजा पर छोड़ दिया।

तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ।
वेपयन्तीं समुद्रीक्ष्य न चाल पदानृपः ॥ ४७ ॥

tām āpatantīm jvalatīm asi-hastāṁ padā bhuvam vepayantīm samudvīkṣya na cacāla padān nṛpaḥ

अर्थ: यद्यपि उन्होंने उसे स्पष्ट देखा — जलती हुई, हाथ में तलवार लिए, और पैरों से पृथ्वी को कँपाती हुई अपनी ओर दौड़ती — फिर भी राजा अपने स्थान से एक पग भी न हटे। (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 47)

उनकी निर्भयता का कारण पहले से ही कार्यरत था। भगवान् द्वारा अपने भक्त की रक्षा हेतु पहले से नियत सुदर्शन चक्र ने पलक झपकते ही उस कृत्या को भस्मसात् कर डाला, ठीक वैसे ही जैसे वनाग्नि किसी क्रुद्ध सर्प को निगल जाती है।

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ।
ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥

prāg diṣṭaṁ bhṛtya-rakṣāyām puruṣeṇa mahātmanā dadāha kṛtyāṁ tām cakraṁ kruddhāhim iva pāvakaḥ

अर्थ: परम पुरुष द्वारा अपने भक्त की रक्षा हेतु पहले से नियुक्त उस चक्र ने उस कृत्या को वैसे ही भस्म कर दिया जैसे अग्नि क्रुद्ध सर्प को जला देती है। (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 48)



सुदर्शन चक्र दुर्वासा के क्रोध से उत्पन्न अग्निमयी कृत्या को भस्म करता है, जबकि भक्त राजा अविचल खड़े रहते हैं — भगवान् की रक्षा साक्षात् दिखाई देती है (श्लोक 47-48)।

दुर्वासा की भाग-दौड़ और भगवान् की शरण

अपना ही अस्त्र नष्ट होते और चक्र को अब अपनी ओर मुड़ते देख भयभीत ऋषि प्रत्येक लोक में भागे — दिशाएँ, आकाश, पृथ्वी, पाताल, समुद्र और स्वर्ग — किन्तु जहाँ भी गए, सुदर्शन ठीक पीछे रहा। पहले वे ब्रह्मा के पास दौड़े, जिन्होंने स्वीकार किया कि वे और समस्त सृष्टि के अधिपति स्वयं भगवान् के विधान के अधीन हैं और उनके अस्त्र के समक्ष असमर्थ हैं। फिर दुर्वासा भगवान् शिव के पास भागे, जिन्होंने भी कहा कि न वे और न महानतम ऋषि भगवान् की माया को भेद सकते हैं, और उन्हें एकमात्र श्री हरि की शरण लेने की सलाह दी।

अन्ततः, अन्य सब आशा टूट जाने पर, दुर्वासा वैकुण्ठ पहुँचे और देवी श्री सहित विराजमान भगवान् विष्णु के चरणों में काँपते हुए गिर पड़े, भगवान् के किसी प्रिय भक्त का अपराध करने की क्षमा माँगते हुए।

सन्दह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना
तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो
कृतागसं माव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥

sandahyamāno 'jita-śastra-vahninā tat-pāda-mūle patitaḥ savepathuḥ āhācyutānanta sad-īpsita prabho kṛtāgasam māvahi viśva-bhāvana

अर्थ: अजेय भगवान् के अस्त्र की अग्नि से जलते हुए वे काँपते हुए उनके चरणों में गिर पड़े और बोले, “हे अच्युत, हे अनन्त, हे सत्पुरुषों द्वारा वांछित प्रभो, हे विश्व के रचयिता, मुझ अपराधी की रक्षा कीजिए।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 61)



प्रत्येक लोक में सुदर्शन द्वारा पीछा किए जाने पर, विनम्र हुए ऋषि दुर्वासा अन्ततः वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु के चरणों में काँपते हुए गिरते हैं और उनकी रक्षा की याचना करते हैं
(श्लोक 61-62)।

“मैं अपने भक्तों के अधीन हूँ”

भगवान् का उत्तर समस्त शास्त्रों की सबसे मर्मस्पर्शी घोषणाओं में से एक है। वे अपनी सर्वोच्चता का बखान नहीं करते, अपितु स्वयं को मानो अपने भक्तों का आश्रित बताते हैं।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।

साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥

aham bhakta-parādhīno hy asvatantra iva dvija sādhubhir grasta-hṛdayo bhaktair bhakta-jana-priyaḥ

अर्थ: “हे ब्राह्मण, मैं अपने भक्तों के अधीन हूँ, मानो मैं तनिक भी स्वतन्त्र न होऊँ। मेरा हृदय मेरे साधु भक्तों द्वारा वश में कर लिया गया है, और जैसे वे मुझे प्रिय हैं, वैसे ही मैं उन्हें प्रिय हूँ।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 63)

भगवान् ने कहा कि वे अपने भक्तों के बिना स्वयं अपने आप की या देवी श्री की भी कामना नहीं करते; कि वे उन्हें कभी नहीं त्याग सकते जिन्होंने सब कुछ — घर, परिवार, प्राण और धन, यह लोक और परलोक — त्यागकर उनकी शरण ली है; और कि भक्त, अपने प्रेम से तृप्त, चार प्रकार की मुक्ति की भी कामना नहीं करते। फिर उन्होंने सार-बात कही।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।

मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥

sādhavo hṛdayaṁ mahyaṁ sādḥūnām hṛdayaṁ tv aham mad-anyat te na jānanti nāhaṁ tebhyo manāg api

अर्थ: “साधु भक्त मेरा हृदय हैं, और मैं अपने भक्तों का हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते, और मैं भी उनके अतिरिक्त किसी को तनिक भी नहीं जानता।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 68)

भगवान् ने दुर्वासा से कहा कि एकमात्र उपाय यही है कि वे उसी भक्त की शरण जाएँ जिसका उन्होंने अपराध किया है: सत्पुरुषों के विरुद्ध प्रयुक्त बल प्रहार करने वाले पर ही लौट आता है, और विनयरहित तपस्या हानिकर हो जाती है। अतः वे राजा अम्बरीष के पास जाकर उनसे क्षमा माँगें।

ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।

क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥

brahmaṁs tad gaccha bhadraṁ te nābhāga-tanayaṁ nṛpam kṣamāpaya mahā-bhāgaṁ tataḥ śāntir bhaviṣyati

अर्थ: “अतः हे ब्राह्मण — आपका कल्याण हो — नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष के पास जाइए और उस परम भाग्यशाली आत्मा से क्षमा माँगिए; तभी आपको शान्ति मिलेगी।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 71)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सत्य ही सच्ची विरासत है। पिता के ईमानदार परामर्श के सिवाय कुछ न पाकर भी नाभाग केवल सत्य बोलकर और दूसरे के अधिकार का सम्मान करके पवित्र ज्ञान एवं धन दोनों पा लेता है (श्लोक 6-11)।
2. धन और शक्ति केवल विरक्त के हाथों में सुरक्षित हैं। अम्बरीष ने समस्त पृथ्वी पर राज्य किया, फिर भी उसे स्वप्नवत् माना, और अपार सम्पत्ति को मिट्टी के ढेले-सा समझा — इसीलिए उसका वैभव उन्हें कभी दास न बना सका (श्लोक 15-17)।
3. भक्ति सम्पूर्ण आत्म-समर्पण है। अम्बरीष ने अपने जीवन का एक कोना भी अपने लिए न रखा; मन, वाणी, हाथ, नेत्र, कान, जिह्वा, चरण और मस्तक — प्रत्येक को भगवान् की सेवा में भाग दिया (श्लोक 18-20)।
4. भगवान् स्वयं अपने शरणागत भक्त की रक्षा करते हैं। अम्बरीष दुर्वासा की अग्निमयी कृत्या के विरुद्ध हाथ तक नहीं उठाते; वे बस अविचल खड़े रहते हैं, और पहले से नियुक्त सुदर्शन उनकी रक्षा करता है (श्लोक 47-48)।
5. भगवान् स्वयं को अपने भक्तों का सेवक बना लेते हैं। भगवान् शरणागत आत्मा के विरुद्ध अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे, न उन्हें त्यागेंगे जिन्होंने उनके लिए सब कुछ त्याग दिया — “मैं अपने भक्तों का हृदय हूँ, और वे मेरे हैं” (श्लोक 63-68)।

एक श्रद्धा-चिन्तन

इस अध्याय में एक शान्त महानता है जिसका सिंहासनों से कोई सम्बन्ध नहीं। नाभाग अपने भाग से वंचित होकर सत्य से उत्तर देता है; अम्बरीष समस्त पृथ्वी के स्वामी होकर उसे स्वप्नवत् मानते हैं; और जब अग्नि का शाप गर्जता हुआ उनकी ओर आता है, तब विश्व का सम्राट् बस हिलता तक नहीं। उनकी यह स्थिरता विवशता नहीं, विश्वास है — उन्होंने अपना हृदय भगवान् को इतना पूर्ण दे दिया है कि उनके पास बचाने को कुछ शेष ही नहीं। और भगवान् का उत्तर दिव्य-दूरी की हमारी हर धारणा को उलट देता है: वह परम, जिसे कोई अस्त्र जीत नहीं सकता, स्वयं को अपने प्रेमियों का स्वेच्छा-आश्रित कहता है, कहता है कि उसका हृदय उनके हाथ में है। यदि यह सत्य है, तो समस्त लोकों में सबसे सुरक्षित स्थान कोई दुर्ग या कोष नहीं, अपितु अम्बरीष की वही मुद्रा है — अविचल खड़े, कुछ न चाहते, पूर्णतः भगवान् के। शक्तिशाली दुर्वासा यह भय में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाने के बाद सीखते हैं; कोमल राजा यह सदा से जानते थे।

एक दैनिक श्रद्धा-अभ्यास

आज, अम्बरीष का अनुसरण करते हुए, भगवान् को केवल एक क्षण नहीं, अपितु अपनी इन्द्रियाँ एक-एक कर अर्पित करें। दिनभर के कार्यों में प्रत्येक कर्म को मौन भाव से उन्हें समर्पित करें — एक मधुर वचन उन्हें अर्पित वाणी के रूप में, एक ईमानदार व्यवहार उन्हें अर्पित सत्य के रूप में, किसी की छोटी सेवा उनके भक्त की सेवा के रूप में, किसी मन्दिर या प्रार्थना-स्थल तक की चहलकदमी उनकी ओर बढ़ते चरणों के रूप में। “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” से आरम्भ करें, और सम्पूर्ण दिन को चुपचाप उपासना बनने दें। और जब कोई बात आपको भयभीत या विचलित करे, तो उस राजा को स्मरण करें जो हिला तक नहीं: परिणाम भगवान् को सौंप दें, जिन्होंने अपने शरणागतों की रक्षा का वचन दिया है।

उपसंहार

नवम स्कन्ध का चौथा अध्याय हमें एक ही दैदीप्यमान सत्य के साथ छोड़ता है: भगवान् स्वयं अपनी इच्छा से अपने शरणागत भक्त के हृदय से बँध जाते हैं। नाभाग की सत्यनिष्ठा और अम्बरीष का सम्पूर्ण आत्म-समर्पण एक ही शरण के भिन्न द्वार हैं — जो जीवन पूर्णतः भगवान् के हाथों सौंप दिया गया हो, उसे किसी अन्य रक्षा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि सुदर्शन स्वयं नियुक्त खड़ा है, और सबसे भयंकर शाप भी उस सीमा को लाँघ नहीं सकता। भय में तीनों लोकों का चक्कर लगाते दुर्वासा वही सीखते हैं जो अम्बरीष अपनी अविचलता में पहले से जानते थे: स्वर्ग या पृथ्वी में इससे सुरक्षित कुछ नहीं कि सर्वस्व त्यागकर उस भगवान् के हो जाएँ जो अपने भक्तों को अपना ही हृदय कहते हैं।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), नवम स्कन्ध, चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ 11–18।
- शृंखला: श्रीमद्भागवत विज़्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के साथ किसी सम्बद्धता या उसके अनुमोदन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-9-chapter-4-nabhaga-and-the-devotion-of-king-ambarisha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

